2.0 उद्देश्य

एम. ए. (संस्कृत) पाठ्यक्रम की द्वितीय इकाई में ब्राह्मण, आरण्यक एवं वैदिक आख्यान (शुन:शेप) का परिचय प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई के अध्ययनानन्तर आप अवगत हो पायेंगे –

- ब्राह्मण शब्द का स्वरूप
- ब्राह्मण ग्रंथो का प्रतिपाद्य
- ब्राह्मण ग्रंथो का सामान्य परिचय
- आरण्यक का स्वरूप
- आरण्यक-ग्रंथो का प्रतिपाद्य
- आरण्यक-ग्रंथो का सामान्य परिचय
- वैदिक आख्यान का सामान्य परिचय
- शुन:शेप आख्यान का कथानक एवं सन्देश

2.1 प्रस्तावना

निरुक्तकार यास्क का यह कथन **पुरुषविद्याऽऽनित्यत्वात् कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे** लेखन का प्रयोजन सामान्यतया उस (उत्तरवैदिक) काल के मानव की मेधाशक्ति के उत्तरोत्तर ह्रास की ओर सङ्केत करता है। वैदिक संहिताओं में प्राप्त मन्त्रों के तात्पर्य (अर्थ) का दुर्बोध हो जाना ही सम्भवत: ब्राह्मण-ग्रंथो के अभ्युदय का कारण बना। एक लम्बी कालावधि तक वैदिक यागों के अनुष्ठान की प्रक्रिया का संवहन मौखिक परम्परा के आधार पर निरन्तर होता आ रहा था किन्तु कालानुगुण जटिल एवं दुरूह होता गया अत: कई प्रकार के सन्देह एवं शङ्काओं का बीज जनमानस में पनप ने लगा। इसी के साथ ब्राह्मण-ग्रंथो (साहित्य) की आकाङ्क्षा का उदय हुआ, जिसका प्रमुख उद्देश्य वेदमन्त्रों में निहित तात्पर्य की सुगम व्याख्या करना एवं यज्ञ/याग की विधि के समस्त अङ्गों का सप्रयोजन सूक्ष्म निरूपण करना था।

2.2 ब्राह्मण पद का तात्पर्य

शेषे ब्राह्मणशब्दः (जै.मी.सू.2.1.33) आचार्य जैमिनि का यह कथन कि मन्त्र से अतिरिक्त वेद का अंश ब्राह्मण है। साथ ही ऋग्वेदभाष्यभूमिका(पृ.37) में आचार्य सायण का यह कथन **अवशिष्टो वेदभागो ब्राह्मणम्** अर्थात् मन्त्र से अवशिष्ट वेद का भाग ब्राह्मण है। इस प्रकार उभय आचार्यो के द्वारा प्रतिपादित तात्पर्य ब्राह्मण शब्द के एक ही स्वरूप को प्रकाशित करते हैं। सामान्यतया लौकिक दृष्टि का अवलम्बन करने पर प्राय: दो तात्पर्यों की ओर यह शब्द गति करता है। प्रथम तात्पर्य ब्राह्मण जाति विशिष्ट का बोधक है, जो पुल्लिङ्ग में प्रयुक्त ब्राह्मण शब्द ही होता है। द्वितीय तात्पर्य ग्रन्थ वाचक शब्द की ओर सङ्केत करता है, जो नपुंसकलिङ्ग में प्रयुक्त होता है।

व्युत्पत्तिपरक दृष्टि से चिन्तन करने पर बृंहि धातु से अण् प्रत्यय करने पर ब्राह्मण शब्द निष्पन्न हो जाता है। आचार्य कात्यायन ने अपने ग्रन्थ वाजसनेयि शुक्लयजु:प्रातिशाख्य में सूत्र दिया है – **ओंकारं वेदेषु अथकारं भाष्येषु।** आचार्य उव्वट ने इसका अर्थ लिखते हुए कहा है – भाष्येषु ब्राह्मणग्रन्थेषु, इस प्रकार उव्वट ब्राह्मणग्रंथो को भाष्यग्रन्थ मानते हैं।

2.3 मन्त्र एवं ब्राह्मण का अभेदान्वय

यज्ञपरिभाषा में कथित **मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्** वचन के माध्यम से आचार्य आपस्तम्ब ने वेद में केवल मन्त्रराशि को ही नहीं अपितु ब्राह्मण को भी समाविष्ट माना है। आपस्तम्ब के इस कथनाभिप्राय का साम्य तन्त्रवार्तिक(1.3.10) के इस वचन **मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद इति नामधेयं षडङ्गमेके** से भी है। तैत्तिरीयसंहिता में मन्त्र ब्राह्मण का एक साथ पाठ होने के कारण भी आपस्तम्ब की उक्त परिभाषा समीचीन है।

2.4 ब्राह्मण ग्रंथो का प्रतिपाद्य विषय

ब्राह्मण ग्रंथो के द्वारा मुख्यतया यज्ञ का प्रतिपादन किया गया है। याग के दो भाग है – विधि एवं अर्थवाद। लौगाक्षिभास्करप्रणीत अर्थसङ्ग्रह में विधि **(अज्ञातार्थज्ञापको वेदभागो विधि:)** को अज्ञात अर्थ का ज्ञापक वेद भाग बताया गया है। आचार्य शबरस्वामी(श.भा.2.1.11) के अनुसार विधियां ही अर्थवादादि के स्वरूप में ब्राह्मणग्रंथो में दश प्रकार से व्यवहृत है –

हेतुर्निवचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधि:। परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारणकल्पना॥
उपमानं दशैवैते विधयो ब्राह्मणस्य तु। एतद्वै सर्ववेदेषु नियतं विधिलक्षणम्॥

सामान्य शब्दों में अर्थवाद **(प्राशस्त्यनिन्दात्मकं वाक्यम्)** प्रशस्त कर्म की प्रशंसात्मक एवं त्याज्य कर्म की निन्दात्मक विधिवाक्य है।

2.5 ब्राह्मण ग्रंथो की भाषा एवं शैली

ब्राह्मण ग्रंथो की भाषा ही उन्हें दुरूह से सरल की श्रेणी में स्थापित करती हैं। यह भाषा लौकिक एवं वैदिक संस्कृत के मध्य सेतुवत् कार्य करती है, जो काठिन्य को सरल बनाकर प्रवाहमय एवं बोधगम्य गद्य शैली में प्रस्तुत करती हैं। इसमें उच्चारण में आने वाली एवं अर्थानुसन्धान में आने वाली त्रुटियों का प्रवाह कम हो जाता है। मध्य मध्य में पद्यबद्ध गाथाओं का समावेश इनको और रुचिकर बना देता है। इसमें लघु एवं दीर्घ दोनों प्रकार के वाक्यों का समावेश है। इनमें कठिन सन्धियों एव सामासिक प्रयोगों की न्यूनता है। कुछ ब्राह्मणग्रन्थ यथा – शतपथ, तैतिरीयादि स्वराङ्कनयुक्त है तो कुछ ताण्ड्य, शाङ्खायनादि स्वराङ्कनरहित है।

2.6 ब्राह्मण ग्रंथो का देश – काल

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार देश के मध्य में कुरु पाञ्चाल, शिवि, सौवीर प्रभृति जनपद हुआ करते थे। तत्कालीन भारत के पूर्व में विदेह प्रभृति जातियों का राज्य था। दक्षिण में भोज तथा पश्चिम में नीच्य और अवाच्य राज्य थे। काशी, मत्स्य, कुरुक्षेत्र का उल्लेख भी ब्राह्मणों में है। शतपथ ब्राह्मण में गान्धार, केकय, शाल्य, कोसल आदि जनपदों का विशेषत: उल्लेख प्राप्त होता है। ताण्ड्य ब्राह्मण में कुरु पाञ्चाल जनपदों से नैमिषारण्य और खाण्डव वनों के मध्यवर्ती भूभाग की विशेष चर्चा प्राप्त है। साथ ही सरस्वती और उसकी सहायक नदियों के उद्गम और लोप का विवरण मिलता है।

वैदिक ग्रंथो के प्रणयन का काल-निर्धारण आज तक विवादित है तथापि प्राप्त तथ्यों की तुलना एवं समीक्षण से ब्राह्मणग्रंथो का काल इतिहासविदों की दृष्टि से सामान्यत: तीन सहस्र ईसा पूर्व से दो सहस्र ईसा पूर्व के मध्य का माना जाता है किन्तु भारतीय सनातन धर्म वेदों में इतिहास के तथ्य को अस्वीकार करता रहा है एवं मन्त्र एवं ब्राह्मणों को अपौरुषेय मानता है।

2.7 ब्राह्मण ग्रंथो का सांस्कृतिक वैशिष्ट्य

ब्राह्मण ग्रंथो के माध्यम से याग के उद्भव, विकासादि प्राचीन परम्पराओं का अवबोध हो पाता है। यज्ञ के स्वरूप का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवरण प्राप्ति का कारण भी ब्राह्मण ग्रन्थ ही हैं। आचार्य शबरस्वामी ने याग के अनुष्ठान करने वाले को धार्मिक कहा है। समस्त ब्राह्मण ग्रंथो की सार्थकता आम्नाय की क्रियार्थक सिद्धि में ही है। दिवस से सहस्र संवत्सर तक चलने वाले यागों के विस्तृत विधि का प्रतिपादन ब्राह्मणग्रंथो के माध्यम से ही अद्यावधि यावत् प्राप्त है। ब्राह्मणग्रन्थ यज्ञविधि में समाविष्ट हुए नवाचारों के प्रवेश के द्रष्टा है।

पवित्रसलिला गंगा, यमुना, अन्त:सलिला सरस्वती नदी के तटों पर निवासरत समस्त मानवों की धार्मिक आस्थाओं का संचय ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं। भक्ति आन्दोलन के प्रवाहवश व्ययसाध्य यज्ञों के सम्पादन का स्थान अन्य क्रियाओं ने ले लिया। स्वाध्याय, मन्त्र जप, तीर्थ-दर्शन और व्रतादि अन्य धार्मिक प्रकल्पों को ब्राह्मणग्रंथो के माध्यम से प्रोत्साहन मिला। अभिचारकर्म आदि प्राचीनकाल से ही प्रचलित थे। इस प्रकार समस्त धर्म स्वरूपों को स्मृतियों तथा पुराणों ने पोषित किया। इतिहास, भूगोल तथा आचार-व्यवहार की दृष्टि से भी ब्राह्मण ग्रन्थ उपादेय है।

2.8 ब्राह्मण ग्रंथो का साहित्यिक वैशिष्ट्य

ब्राह्मणग्रंथो के गम्भीर अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि इन में उत्कृष्ट साहित्यिक सौष्ठव विद्यमान है। यद्यपि इन ग्रंथो के प्रणयन का हेतु काव्यात्मक सौन्दर्य का प्रदर्शन नही था किन्तु इनके प्रकृत स्वरूप से प्रवचनकर्ताओं के कलात्मक चैतन्य का बोध अवश्य होता है। यथा – सामगानों की प्रस्तुति के क्रम में मात्र दृष्ट एवं अदृष्टपुण्य प्राप्ति ही नहीं थी अपितु कलात्मकता, मधुरता भी थी।

इन ग्रंथो में रस एवं भावाभिव्यक्ति की प्रचुरता भले न दिखे किन्तु इनका प्रणयन करने वालों को मानवीय मनोभावों का अच्छा परिचय था। अर्थवादों का वैविध्यपूर्ण वितान वस्तुत: मानवीय मनोविज्ञान पर ही आधारित है। मनुष्य के स्वभाव, मन को समझे बिना प्रशस्ति या निन्दा के द्वारा याग की प्रेरणा ही नहीं उत्पन्न की जा सकती। अत: विभिन्न इष्ट फलों को ध्यान में लेकर ही अर्थवाद का समानान्तर संसार ब्राह्मणग्रन्थकारों ने रचा है। साहित्यशास्त्रीय जिन स्थायीभावों की योजना मूल मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों राग, क्रोध, भयादि के आधार पर की गई है, उनकी प्रतीति इन ग्रंथो के प्रणेताओं को अवश्य थी।

ब्राह्मणग्रंथो में लाक्षणिकता, उपमा, रूपक विधानादि मुख्यत: काव्यात्मक सौन्दर्य को प्रकाशित करते हैं। इन साहित्यिक प्रवृत्तियों की ओर सर्वप्रथम निरुक्तकार यास्क ध्यानाकर्षण करते हुए कहते है – **बहुभक्तिवादिनि हि ब्राह्मणानि (निरु.7.24)** तात्पर्य यह है कि ब्राह्मणग्रंथो में, देवता विषयक, भक्ति अथवा गुण-कल्पना के द्वारा तत्त्वान्वेषण बहुविध प्रकार से हुआ है।

साहित्यशास्त्रीय लक्षणा निरूपण प्रसङ्ग में आचार्यों ने **सिंहो माणवकः** प्रभृति लौकिक उदाहरणों के साथ ही **यजमानः प्रस्तरः, आदित्यो यूपः** प्रभृति ब्राह्मणोक्त उदाहरण उन्मुक्त होकर दिये हैं। ताण्ड्यब्राह्मण (6.7.10) के सन्दर्भानुसार यज्ञ में अध्वर्यु-प्रमुख ऋत्विक् वैसे ही बहिष्पवमान में प्रसर्पण करते है जैसे अहेरी मृग को पकडने के लिए बिना आहट किये मन्द मन्द बढता है। ब्राह्मणग्रंथो में रूपकों की भी विशाल राशि विद्यमान है। ब्राह्मणग्रन्थों का गहन अनुशीलन इसलिए आवश्यक है यतो हि यह वैदिक और लौकिक साहित्य के मध्य सेतु स्वरूप है।

2.9 ब्राह्मण ग्रंथो के भाष्य एवं भाष्यकार

सायणाचार्य ने संहिताओं पर ही नहीं अपितु ब्राह्मणग्रंथो पर भी अपनी लेखनी चलाई। सामवेदीय कुछ ब्राह्मणों तथा अथर्ववेदीय गोपथ ब्राह्मण को छोडकर लगभग अधिकांश ब्राह्मणों पर सायण का भाष्य प्राप्त होता है। सायण को वैदिक कर्मकाण्ड के सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक ही नहीं वरन् दार्शनिक पक्षों का भी गहरा ज्ञान था।

ऐतरेय ब्राह्मण पर सायण से पहले के दो भाष्य प्राप्त होते है, प्रथम गोविन्दस्वामी का तथा द्वितीय षड्गुरुशिष्य का है। षड्गुरुशिष्य का भाष्य संक्षेप में है और केरल के अनन्तशयन ग्रन्थमाला से प्रकाशित हो चुका है।

शतपथब्राह्मण पर सायण से पूर्व हरिस्वामी का अपूर्ण भाष्य प्राप्त होता है। ये पराशर गोत्र में समुत्पन्न नागस्वामी के पुत्र थे। अवन्तिका नरेश विक्रम के ये धर्माध्यक्ष थे। हरिस्वामी का भाष्य प्राचीन एवं प्रामाणिक दोनों ही है। इसका काल 538 ई. माना जाता है।

तैत्तिरीयब्राह्मण पर सायणाचार्य के अतिरिक्त भट्टभास्कर का भी भाष्य प्राप्त होता है। सामवेद की कौथुम शाखा से सम्बद्ध सभी ब्राह्मणों पर सायण का भाष्य प्राप्त होता है। ताण्ड्यब्राह्मण पर जयस्वामी (हरिस्वामी का पुत्र) की टीका की चर्चा प्राप्त होती है किन्तु इसकी उपलब्धता में सन्देह है। मन्त्रब्राह्मण पर गुणविष्णु का भाष्य प्राप्त होता है। संहितोपनिषद्ब्राह्मण पर द्विजराज का भाष्य प्रकाशित है। इनके पिता विष्णु भट्ट श्रीवंश के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् थे। गोपथ ब्राह्मण पर कोई भी भाष्य अप्राप्त है।

2.10 ऋग्वेदीय ब्राह्मण : संक्षिप्त परिचय

1. ऐतरेय ब्राह्मण

महिदास ऐतरेय नामक ऋषि की प्रसिद्धि सामान्यतया ऐतरेय ब्राह्मण के प्रवाचक के रूप में है। षड्गुरुशिष्य के मतानुसार यज्ञवल्क संज्ञक ब्राह्मण की द्वितीया पत्नी (इतरा) के पुत्र ऐतरेय थे। भट्टभास्कर के मत में इतर ऋषि के पुत्र होने के कारण ऐतरेय नाम हुआ। स्कन्दपुराण का सन्दर्भ ऐतरेय के पिता हारीत वंशीय माण्डूकि ऋषि को बतलाता है।

इस ब्राह्मण में 40 अध्याय हैं। प्रत्येक 05 अध्यायों के समूह को पंचिका शब्द से अभिप्रेत किया गया है। इस प्रकार कुल 08 पंचिका है। अध्याय का अवान्तर विभाग खण्ड में है। समस्त पंचिका के खण्डों का योग करने पर यह खण्ड संख्या 285 प्राप्त होती है।

होता नामक ऋत्विक् से ऋग्वेद का विशेष सम्बन्ध होने से इस ब्राह्मण में सोमयाग के होतृ कर्म का बाहुल्य है। अग्निष्टोम याग समस्त सोमयागों की प्रकृति है। अत: सर्वप्रथम वर्णन (प्रथम से तृतीय पंचिका के पांचवे अध्याय के पांचवे खण्ड तक) किया गया है। तदनन्तर सोमयाग की विकृतियों - उक्थ्य, क्रतु, षोडशी एवम् अतिरात्र का वर्णन (चतुर्थ पंचिका के द्वितीय अध्याय के पंचम खण्ड तक) है। इसके पश्चात् सत्रयाग – गवामयन(चतुर्थ पंचिकागत द्वितीय अध्याय के षष्ठ खण्ड से तृतीय अध्याय के अष्टम खण्ड तक), का वर्णन है। अङ्गिरसामयन तथा आदित्यानामयन भी पूर्वोक्त के विभाग में ही सन्निविष्ट हैं। पञ्चमी पञ्चिका में विभिन्न द्वादशाह संज्ञक यागों का निरूपण है। इसी पञ्चिका के अन्तर्गत अग्निहोत्र का भी वर्णन है। षष्ठी पञ्चिका में सोमयाग सम्बद्ध प्रकीर्ण विषय हैं। इसी पञ्चिका के चतुर्थ एवं पञ्चम अध्याय में बालखिल्यादि सूक्तों की विशद प्ररोचना की गई है, जिनकी गणना खिलों के अन्तर्गत की जाती है। पशु अंगों की विभक्ति

प्रक्रिया के साथ सप्तमी पञ्चिका का प्रारम्भ होता है। इसी पञ्चिका के द्वितीय अध्याय अग्निहोत्री के लिये विभिन्न प्रायश्चित्तों, तृतीय अध्याय में शुन:शेपाख्यान तथा चतुर्थ अध्याय में राजसूययाग सम्बद्ध प्रारम्भिक कृत्यों का वर्णन है। अष्टमी पञ्चिका के प्रथम एवं द्वितीय अध्याय में राजसूय का ही वर्णन है। अन्तिम तीन अध्यायों में ऐन्द्र महाभिषेक, पुरोहित की महत्ता एवं ब्रह्मपरिमर(शत्रुक्षयाकारी प्रयोग) का वर्णन है।

इस पर चार भाष्य प्राप्त होते हैं – गोविन्दस्वामी, भट्टभास्कर, षड्गुरुशिष्य तथा सायणाचार्य कृत। इनमें से अन्तिम दो का ही प्रकाशन हुआ है तथा पठन-पाठन में सायण भाष्य की ही व्याप्ति दृष्टिगोचर होती है।

ऐतरेय ब्राह्मण के अन्तिम अध्याय में पुरोहित का विशेष महत्त्व प्रतिपादित है। राजा के द्वारा पुरोहित अवश्य नियुक्त होना चाहिए यतो हि वह आहवनीय अग्नि के तुल्य है। यथार्थत: पुरोहित प्रजा का प्रतिनिधि है, जो राजा से प्रजा के प्रति कभी द्रोह न करने की प्रतिज्ञा कराता है।

ऐतरेय ब्राह्मण में अनेक वैज्ञानिक सूचनाओं का संकलन प्राप्त होता है। यथा – तीसवें अध्याय में पृथिवी के प्रारम्भ में गर्मरूप का वर्णन मिलता है। इस ब्राह्मण के प्रवचनकर्ताओं ने रूपकात्मक एवं प्रतीकात्मक शैली का आश्रय लिया है। भाव यह है कि बहुविध उपमाओं एवं रूपकों के आलम्बन से विषय निरूपण अत्यन्त सरल एवं ग्राह्य हो गया है।

इसके प्रकाशित संस्करणों का विवरण अधोलिखित है –

1. 1863 में अंग्रेजी अनुवादसहित मार्टिन हॉग के द्वारा सम्पादित और मुम्बई से मुद्रित, दो खण्डों में।
2. थियोडार आउटफ्रेख्ट के द्वारा 1878 में सायण भाष्यांशों के साथ बोन से प्रकाशित संस्करण।
3. 1895 से 1906 के मध्य सत्यव्रत सामश्रमी के द्वारा कलकत्ता से सायण-भाष्य सहित चार खण्डों में प्रकाशित संस्करण।
4. ए बी कीथ के द्वारा अंग्रेजी में अनुदित 1920 में कैम्ब्रिज से (तथा 1969 में दिल्ली से पुनर्मुद्रित) प्रकाशित संस्करण।
5. 1925 में निर्णयसागर से मूलमात्र प्रकाशित जिसका भारत सरकार ने 1990 के दशक में ही पुनर्मुद्रण कराया है।
6. 1950 में गंगाप्रसाद उपाध्याय का हिन्दी अनुवाद मात्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से प्रकाशित।
7. 1980 में सायण भाष्य और हिन्दी अनुवाद सहित सुधाकर मालवीय के द्वारा सम्पादित, वाराणसी से प्रकाशित संस्करण।
8. अनन्तकृष्ण शास्त्री के द्वारा षड्गुरुशिष्य कृत सुखप्रदा वृत्ति सहित, तीन खण्ड में त्रिवेन्द्रम से 1942 से 1952 के मध्य प्रकाशित संस्करण।

2. शांखायन ब्राह्मण

यह ऋग्वेद का द्वितीय प्राप्त ब्राह्मण है। इसका सांख्यायन नाम से भी उल्लेख प्राप्त होता है। इसी का अपर नाम कौषीतकि ब्राह्मण भी है। यह वाष्कल शाखा से सम्बद्ध है। इस पर कोई प्राचीन भाष्य प्राप्त नहीं हुआ है।

यह 30 अध्याय में निबद्ध है। प्रत्येक अध्याय का खण्ड के रूप में अवान्तर विभाग है। खण्डों का कुल संख्या 227 है। उपलब्ध जानकारी के अनुसार इसका प्रवचन शांखायन अथवा कौषीतक द्वारा

किया गया है। इसमें ऐतरेय की अपेक्षा सोमयागों के अतिरिक्त 06 अध्यायों में दर्शपूर्णमासादि का विवेचन है। इसमें ऐतरेय के अन्तिम 10 अध्यायों में प्राप्त विषय नहीं हैं। अधिक स्पष्टता, सुबोधता के कारण ऐतरेय इससे परवर्ती ज्ञात होता है। याग-मीमांसा में इस ब्राह्मण को प्राचीनता का गौरव है। इसके प्रकाशित संस्करणों का विवरण अधोलिखित है –

1. कौषीतकि ब्राह्मणम्, सम्पादक बी.लिण्डनर 1887।
2. शांखायन ब्राह्मणम्, सम्पादक गुलाबराय वजेशंकर ओझा, आनन्दाश्रम, पुणे 1911।
3. ऋग्वेद ब्राह्मण्स के अन्तर्गत ए.बी.कीथ का अंग्रेजी अनुवाद केम्ब्रिज से 1920 में प्रकाशित।
4. 1971 में मोतीलाल बनारसीदास से पुनर्मुद्रित संस्करण।

2.11 शुक्लयजुर्वेदीय ब्राह्मण : संक्षिप्त परिचय

1. शतपथ ब्राह्मण

यह ग्रन्थ समस्त ब्राह्मण ग्रंथो में सबसे बडे आकार वाला है। यह शुक्लयजुर्वेद की दोनों शाखाओं में माध्यन्दिन एवं काण्व पर स्वरांकन सहित उपलब्ध है। गणरत्नमहोदधि के अनुसार शतपथ यह नाम 100 अध्याय संख्या के आधार पर हुआ है – शतं पन्थानो यत्र शतपथः तत्तुल्यग्रन्थः। यद्यपि काण्व शाखीय शतपथ में 104 अध्याय प्राप्त होते है तथापि 100 संख्या का प्रामुख्य नामकरण का कारक हो सकता है।

माध्यन्दिन शतपथ में 14 काण्ड, 100 अध्याय, 438 ब्राह्मण तथा 7624 कण्डिकाएं है। प्रथम काण्ड में दर्श एवं पौर्णमास का विवेचन है। द्वितीय काण्ड में अग्न्याधान, पुनराधान, अग्निहोत्र, उपस्थान, प्रवत्स्यदुपस्थान, आगतोपस्थान, पिण्डपितृयज्ञ, आग्रयण, दाक्षायण, तथा चातुर्मास्यादि यागों की विवेचना की गई है। तृतीय काण्ड में दीक्षाभिषवपर्यन्त सोमयाग का वर्णन है। चतुर्थ काण्ड में सोमयाग के तीनों सवनों के अन्तर्गत सम्पादित किये जाने वाले कर्मो का, षोडशीसदृश सोमसंस्था, द्वादशाह तथा सत्र का प्रतिपादन किया गया है। पंचम काण्ड में वाजपेय तथा राजसूय का वर्णन है। षष्ठ काण्ड में उखा सम्भरण तथा विष्णुक्रमण का वर्णन है। सप्तम काण्ड में याग में चयनयाग, गार्हपत्यचयन, अग्निक्षेत्र संस्कार तथा दर्भस्तम्बादि के दूर करने तक के कार्यो का विवेचन है। अष्टम काण्ड में प्राणभृत् प्रभृति इष्टकाओं की स्थापनाविधि वर्णित है। नवम काण्ड में शतरुद्रिय होम, धिष्ण्यचयन, पुनश्चितिः तथा चित्युपस्थान वर्णित है। दशम काण्ड में चिति सम्पत्ति, चयनयागस्तुति, चित्यपक्ष-पुच्छविचार, चित्याग्निवेदी का परिमाण, चयन काल, चित्याग्नि के छंदो का अवयव रूप, यजुष्मती और लोकम्पृणा आदि इष्टकाओं की संस्था, उपनिषद् रूप से अग्नि की उपासना, मन की सृष्टि, लोकादि रूप से अग्नि की उपासना, अग्नि की सर्वतोमुखता तथा सम्प्रदाय प्रवर्तक ऋषि वंश प्रभृति का विवेचन हुआ है। 11वें काण्ड में आधान काल, दर्शपूर्णमास तथा दाक्षायण यज्ञों की अवधि, दाक्षायण यज्ञ, पथिकृदिष्टि, अभ्युदितेष्टि, दर्शपूर्णमासीय द्रव्यों का अर्थवाद, अग्निहोत्रीय अर्थवाद, ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य, मित्रविन्देष्टि, हवि-समृद्धि, चातुर्मास्यार्थवाद, पंच महायज्ञ, स्वाध्याय-प्रशंसा, प्रायश्चित्त, अंशु और अदाभ्य ग्रह, अध्यात्मक विद्या, पशुबन्ध-प्रशंसा तथा हविर्याग के अवशिष्ट विधानों पर विचार किया गया है। 12वें काण्ड में सत्रगत दीक्षाक्रम, महाव्रत, गवामयन सत्र, अग्निहोत्र-प्रायश्चित्त, सौत्रामणी याग, मृतकाग्निहोत्र तथा मृतक दाह प्रभृति विषयों का निरूपण है। 13 वें काण्ड में अश्वमेध, तद्गत प्रायश्चित्त, पुरुषमेध, सर्वमेध तथा पितृमेध का विवरण है। 14वें काण्ड में प्रवर्ग्य कर्म, धर्म-विधि, महावीर पात्र, प्रवर्ग्योत्सादन, प्रवर्ग्यकर्तृक नियम, ब्रह्मविद्या, मन्थ तथा वंश इत्यादि का प्रतिपादन हुआ है। इसी काण्ड में बृहदारण्यकोपनिषद् भी है।

काण्व शतपथ ब्राह्मण में 17 काण्ड, 104 अध्याय, 435 ब्राह्मण तथा 6806 काण्डिकाएं हैं। प्रथम काण्ड में आधान, पुनराधान, अग्निहोत्र, आग्रयण, पिण्डपितृयज्ञ, दाक्षायण यज्ञ, उपस्थान तथा चातुर्मास्य संज्ञक यागों का विवेचन है। द्वितीय में पूर्णमास तथा दर्शयागों का प्रतिपादन है। तृतीय में अग्निहोत्रीय अर्थवाद तथा दर्शपूर्णमासीय अर्थवाद विवेचित है। चतुर्थ में सोमयागजन्य दीक्षा का वर्णन है। पंचम में सोमयाग, सवनत्रयगत कर्म, षोडशी प्रभृति सोमसंस्था, द्वादशाह याग, त्रिरात्रहीन दक्षिणा, चतुस्त्रिंशद्धोम और सत्रधर्म का निरूपण है। षष्ठ काण्ड में वाजपेययाग का, सप्तम काण्ड में राजसूय का तथा अष्टम में उखासम्भरण का विवेचन है। नवम काण्ड से लेकर 12वें काण्ड तक विभिन्न चयन याग निरूपित है। 13 वें काण्ड में आधान काल, पथिकृदिष्टि, प्रयाजानुयाज मन्त्रण, शंयुवाक्, पत्नीसंयाज, ब्रह्मचर्य दर्शपूर्णमास की शेष विधियां तथा पशुबन्ध का निरूपण है। 14 वें काण्ड में दीक्षा-क्रम, पृष्ठ्याभिप्लववादि, सौत्रामणीयाग, अग्निहोत्र प्रायश्चित्त, मृतकाग्निहोत्रादि का वर्णन है। 15 वें काण्ड में अश्वमेध का, 16वें में सांगोपांग प्रवर्ग्य कर्म का तथा 17 वें काण्ड में ब्रह्मविद्या का विवेचन किया गया है।

शतपथ का प्रवाचक वाजसनेय याज्ञवल्क्य को माना जाता है। शतपथ में प्राप्त उल्लेख **आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूषिं वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते** इस बात की पुष्टि करता है। मैक्डानल ने ब्राह्मणकाल को 800 ईसा पूर्व से 500 तक माना है।

शतपथ के मुख्य संस्करणों में 1940 में लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई से सायण भाष्य (वेदार्थ प्रकाश) तथा हरिस्वामी की टीका सहित सम्पूर्ण माध्यन्दिन शतपथ प्रकाशित। इसका सम्पादन श्रीधर शर्मा वारे द्वारा किया गया। वेबर द्वारा सम्पादित संस्करण 1855 में प्रकाशित। इसी का पुनर्मुद्रण चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी से 1964 में हुआ। सत्यव्रत सामश्रमी के द्वारा अपनी ही टीका के साथ कलकत्ता से 1912 में सम्पादित एवं प्रकाशित। शतपथ (विज्ञान भाष्य) पं. मोतीलाल शर्मा, राजस्थान वैदिक तत्त्व शोध संस्थान, मानवाश्रम, जयपुर से 1956 में प्रकाशित। शतपथ (हिन्दी अनु.) पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय, प्राचीन वैज्ञानिक अध्ययन अनुसन्धान संस्थान, दिल्ली से 1967 में प्रकाशित। शतपथ (कुछ अंशों के सरलभावानुवाद के साथ) सम्पादक चमनलाल गौतम, संस्कृति संस्थान, बरेली से 1973 में प्रकाशित। शतपथ ब्राह्मण, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर से 1950 में मुद्रित। माध्यन्दिन शतपथ (अंग्रेजी अनु.) जूलियस एगलिंग, से.बु.ई.,भाग। काण्व शतपथ (प्रथम काण्ड), कलान्द-सम्पादित, लाहौर। काण्व शतपथ, सम्पादक डॉ. स्वामीनाथन् इन्दिरागान्धी कला केन्द्र, दिल्ली 1994 में प्रकाशित।

2.12 कृष्णयजुर्वेदीय ब्राह्मण : संक्षिप्त परिचय

1. तैत्तिरीय ब्राह्मण

यह कृष्णयजुर्वेद का एकमात्र सम्पूर्ण उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थ होने के गौरव से युक्त है। शतपथ के समान यह भी सस्वर उपलब्ध है। यह तीन काण्डों अथवा अष्टकों में विभक्त है। प्रथम दो काण्डों में आठ-आठ अध्याय अथवा प्रपाठक है। तृतीय काण्ड में 12 अध्याय हैं। भट्टभास्कर ने अपने भाष्य में इन्हें प्रश्न भी कहा है। एक अवान्तर विभाग अनुवाकों का भी है, जिनकी संख्या 353 हैं। इसके प्रवाचक के रूप में वैशम्पायन के शिष्य तित्तिरि की प्रसिद्धि है।

इसके प्रथम काण्ड में अग्न्याधान, गवामयन, वाजपेय, नक्षत्रेष्टि तथा राजसूय यागों का वर्णन है। द्वितीय काण्ड में अग्निहोत्र, उपहोम, सौत्रामणी तथा बृहस्पति सव प्रभृति विविध सवों का निरूपण हैं। तृतीय काण्ड में नक्षत्रेष्टियों तथा पुरुषमेध से सम्बद्ध वर्णन मुख्य रूप से है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण के मुख्य संस्करणों में राजेन्द्रलाल मित्र के द्वारा सायण-भाष्य सहित सम्पादित तथा कलकत्ता से 1862 में, सायण-भाष्य सहित, आनन्दाश्रम, पुणे से 1934 में प्रकाशित, भट्टभास्कर-भाष्य सहित, महादेवशास्त्री द्वारा सम्पादित तथा मैसूर से प्रकाशित।

2.13सामवेदीय ब्राह्मण : संक्षिप्त परिचय

1. शाट्यायन ब्राह्मण

इसके 70 उद्धरणों मे से अधिकांश ऋग्वेद के सायण भाष्य तथा ताण्ड्य ब्राह्मण के सायण भाष्य में मिल जाते है। कुछ उद्धरण ब्रह्मसूत्र के शांकर भाष्य में भी हैं। यह ब्राह्मण वर्तमान समय में अनुपलब्ध हैं।

2. भाल्लविब्राह्मण

सामवेद की भाल्लवि शाखा का उल्लेख ताण्ड्य में है। इसका निर्देश कतिपय श्रौतसूत्रों के अतिरिक्त महाभाष्य (4.2.104) तथा काशिका (4.2.66, 3.105) में भी है। आज के समय में यह अनुपलब्ध है।

3. ताण्ड्य ब्राह्मण

परम्परा द्वारा ताण्डि नामक आचार्य के द्वारा प्रवचन के कारण इस का नाम ताण्ड्य ब्राह्मण हुआ। तण्डि सामविधान(3.9.3) के प्राप्त सन्दर्भ के अनुसार बादरायण के शिष्य थे। इसका अपर नाम 25 अध्यायों में विभक्त होने के कारण पंचविश ब्राह्मण भी है। आकार के कारण महाब्राह्मण भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत भी पांच अध्यायों को पंचिका कहा जाता है।

इस ब्राह्मण ग्रन्थ का मुख्य प्रतिपाद्य सोमयाग है तथापि अध्यायक्रमानुरोध से प्रथम में उद्गाता द्वारा पठनीय यजुषात्मक मन्त्र। द्वितीय एवं तृतीय में त्रिवृत्-पंचदशादि स्तोमों की विष्टुतियां, चतुर्थ एवं पंचम में समस्त सत्रयागों के प्रकृतिभूत् गवामयन का वर्णन, षष्ठ से नवम अध्याय के द्वादश खण्ड तक ज्योतिष्टोम, उक्थ्य तथा अतिरात्रसंस्थ– यागों का वर्णन। नवमाध्याय के शेष खण्डों में विभिन्न प्रायश्चित्त विधियों का वर्णन तथा दशम से पंचदशाध्याय में द्वादशाह, षोडश से एकोनविंशाध्याय में एकाह, विंश से द्वाविंश में अहीन तथा अवशिष्ट तीन अध्यायों में सत्रयागों का विधान उपलब्ध होता है। आहत्य 781611 सुत्याक 178 सोमयाग इसमें निरूपित हैं।

इस की रचना का काल विक्रम से तीन सहस्रपूर्व संभावित है। इसके उपलब्ध संस्करणों में आनन्दचन्द्र वेदान्तवागीश द्वारा संपादित, कलकत्ता से 1870-74 में प्रकाशित, पं. चिन्नस्वामिशास्त्री तथा पं. पट्टाभिरामशास्त्री द्वारा दो भागों में चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी से प्रकाशित (1924, 1936) इसी का पुनर्मुद्रण 1989 में भी हुआ है, लोकेशचन्द्र द्वारा सरस्वती- विहार स्थित ताण्ड्य महाब्राह्मण के हस्तलेख का छाया – मुद्रण तथा **W.Caland** का अंग्रेजी अनुवाद **The Brahmana of Twenty Five Chapters** कलकत्ता 1931 प्रमुख हैं।

4. षड्विंश ब्राह्मण

सामवेद की कौथुम शाखा से सम्बद्ध इस ब्राह्मण को सायण ने ताण्डकशेषब्राह्मण कहा है। इसमें इसकी संज्ञा के अनुरूप छ: अध्याय हैं। पूर्व काल में कभी इन सबको एक ही अध्याय माना जाता रहा होगा। षष्ठ अध्याय की विषय-वस्तु अवशिष्ट पांच अध्यायों से सर्वथा भिन्न है। अत एव उस अंश की अद्भुत ब्राह्मण के रूप में भी मान्यता है।

इस ब्राह्मण के **प्रथम अध्याय** में 07 खण्ड हैं। जिनमें प्रथम दो खण्डों में सुब्रह्मण्या निगद का वर्णन है। तृतीय खण्ड में तीनों सवनों के साम और उनके छन्दों का निरूपण है। चतुर्थ खण्ड में ज्योतिष्टोम

के सुत्याह के वाक् से पहले के कृत्यों का तथा विश्वरूपगान का विधान है। पंचम खण्ड में वसिष्ठ गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण को ब्रह्मा के पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए कहा गया है। षष्ठ खण्ड में प्रायश्चित्त तथा सप्तम खण्ड में सौम्य चरु के निर्वाप का विधान है। **द्वितीय अध्याय** में भी 07 खण्ड हैं। 1 से 3 खण्डों में अग्निष्टोमान्तर्गत बहिष्पवमान के रेतस्या और धूरगानों का विधान है। चतुर्थ खण्ड में ऋत्विजों तथा उपऋत्विजों के यागगत प्रकीर्ण धर्मों का सामान्य वर्णन है। **तृतीय अध्याय** के प्रथम दो खण्डों में होता के द्वारा सम्पादित त्रुटि से यजमान के लिए हानि का वर्णन, तृतीय खण्ड में ऋत्विक् वरण, याग भूमि की याचना तथा यागार्थ उपयुक्त भूमि का वर्णन है। चतुर्थ खण्ड में अवभृथ, रक्षोघ्न साम के प्रयोजन का निरूपण है। 5-8 खण्डों में अभिचारयागों का विधान, पंचम खण्ड में त्रिवृत्स्तोम की दो विष्टुतियों, षष्ठ में पंचदशस्तोम की विष्टुति, सप्तम खण्ड में सप्तदश स्तोम की विष्टुति, अष्टम में एकविंशस्तोम की विष्टुति तथा नवम में त्रिणवस्तोम की विष्टुति का वर्णन है। **चतुर्थ अध्याय** में 06 खण्ड हैं जिसके प्रथम खण्ड में व्यूढद्वादशाहयाग के धर्म, द्वितीय में श्येनयाग, तृतीय एवं चतुर्थ में त्रिवृदग्निष्टोम और संदंशन्यागों का निरूपण है। पंचमखण्ड में वज्रयाग का तथा षष्ठ में वैश्वदेवाख्य त्रयोदशाह का वर्णन है। **पंचम अध्याय 07** खण्डों में विभक्त है। इसके प्रथम खण्ड में अग्निहोत्र निरूपण, द्वितीय में अग्निहोत्र की अन्य इष्ट साधन में महत्ता, तृतीय एवं चतुर्थ में औदुम्बरी और यज्ञयूप का वैशिष्ट्र्य सहित वर्णन है। पंचम खण्ड में सन्ध्योपासना, षष्ठ में चन्द्र के क्षय एवं वृद्धि का तथा सप्तम खण्ड में स्वाहा देवता की उत्पत्ति, पारिवारिक सम्बन्ध और अक्षरादि का कथन है। **षष्ठ अध्याय** में 12 खण्ड है। इसके प्रथम खण्ड में पलाश की समिधाओं से 1008 आहुतियों का विधान, द्वितीय खण्ड में शत्रुविजयार्थ विशिष्टहोम, तृतीय खण्ड में इन्द्र विषयक अद्भुत होम का, चतुर्थ खण्ड में यम के निमित्त अद्भुत कर्मों का अनुष्ठान विहित है। पंचम खण्ड में वरुण से सम्बद्ध अद्भुतों की शान्तिका, षष्ठ खण्ड में विविध निमित्तों की प्राप्ति पर वैश्रवणदेवार्थ होम का विधान है। सप्तम खण्ड में अग्नि सम्बद्ध अपशकुनों के निवारण की विधि उल्लिखित है। अष्टम खण्ड में वायुदेव सम्बद्ध उत्पातों के शमन हेतु विशिष्टहोम, नवम खण्ड में यजमान के द्वारा स्वर्गाभिमुख होकर क्षोम के अद्भुतों की शान्ति का विधान है। दशम खण्ड में विष्णुजन्य अद्भुतों की शान्ति का विधान है। 11वें में रुद्र, 12वें में सूर्यदैवत्य अद्भुतों की शान्तिका विधान है।

इस ब्राह्मण के अद्यावधि पर्यन्त 07 संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें बी.आर. शर्मा द्वारा 1967 में तिरुपति से प्रकाशित संस्करण श्रेष्ठ है।

5. सामविधान ब्राह्मण

इस ब्राह्मण में वर्णित विषय अन्य ब्राह्मणों के विषय एकदम भिन्न है। इसमें जादू टोना जैसे विषयों की प्रधानता है। इसकी शैली न तो पुनरुक्ति प्रधान है और न ही अत्यन्त संक्षिप्त। यह दोनों शैलियों के मध्य की रचना है। यह तीन प्रपाठकों एवं 25 अनुवाकों में विभक्त है। इसके प्रथम प्रपाठक के प्रथम अनुवाक् में प्रजापति की उत्पत्ति और उनके द्वारा भौतिक सृष्टि, साम-प्रशंसा और निर्वचन, सामस्वरों के देवता, देवों के निमित्त यज्ञ और यज्ञ के अनधिकारियों के लिए स्वाध्याय तथा तप का विधान है। द्वितीय अनुवाक में कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र व्रतों का स्वरूप तथा फल उल्लिखित है। तृतीय अनुवाक में स्वाध्याय और अग्न्याधेय के सामान्य नियम, पवमान, दर्शपूर्णमास, अग्निहोत्र, पांचरात्रिक प्रयोग, पशुबन्ध और सौत्रामणी-प्रयोगों का उल्लेख है। चतुर्थ अनुवाक में कुछ श्रौतयागों के साथ रुद्रादि के प्रीति के साधन स्वरूप साम गान विहित है। पंचम से अष्टम पर्यन्त अनुवाकों में अश्लील-भाषण, चोरी, अगम्यागमन, अग्राह्य-ग्रहणादि विषयक प्रायश्चित्त है।

समस्त द्वितीय प्रपाठक और तृतीय प्रपाठक के तीन अनुवाकों में काम्य, रोगादिजन्यभयशमनार्थ, क्षेमार्थ और वशीकरण हेतुक विभिन्न प्रयोग हैं। चतुर्थ से अष्टम अनुवाकों में अभीष्ट की सिद्धि अथवा असिद्धी विषयिणी परीक्षा, राज्याभिषेक प्रयोग, अद्भुत अभिचार शान्ति, युद्धविजय के प्रयोग तथा पिशाचों के वशीकरणार्थ, पितरों और गन्धर्वों के दर्शनार्थ, गुप्त निधि की प्राप्ति हेतु तथा अनेक काम्य प्रयोग दिये गये हैं। नवम प्रपाठक के अन्त में तीन विषयों सामसम्प्रदाय प्रवर्तक आचार्यों का अनुक्रम, अध्ययन के अधिकारियों तथा उपाध्याय की दक्षिणा का निरूपण करके ग्रन्थ का समापन हो जाता है। इस पर अब तक सायण तथा भरतस्वामी के भाष्य मुद्रित हुए हैं।

6. आर्षेय ब्राह्मण

इस ब्राह्मण की विषय वस्तु ऋषियों से सम्बद्ध है। सामगानों के नाम ऋषियों के नामाधारित हैं। इसमें तीन प्रपाठक तथा 82 खण्ड हैं। इस ब्राह्मण की रचना सूत्र शैली में हुई है। इसका बी.आर. शर्मा द्वारा सम्पादित तिरुपति संस्करण 1967 में प्रकाशित हुआ है।

7. देवताध्याय ब्राह्मण

यह ब्राह्मण केवल 04 खण्डों से युक्त है। कुछ प्रकाशित संस्करणों में तीन ही खण्ड है। इसमें मुख्यतया निधनभेद से सामों के देवताओं का निरूपण हुआ है। प्रथम खण्ड में देव-नामों का ही विभिन्न सामों के सन्दर्भ में संकलन है। द्वितीय खण्ड में छन्दों के वर्णों और देवताओं का निरूपण हुआ है। तृतीयखण्ड में सामाश्रित छन्दों के नामों की निरुक्तियां है। चतुर्थ खण्ड में गायत्रसाम की आधारभूत सावित्री के विभिन्न अंगों की विविधदेवरूपता का वर्णन है। सम्पूर्ण ब्राह्मण में सूत्र शैली का प्रयोग हुआ है।

इसके दो संस्करण प्राप्त होते हैं – ए.सी. बर्नेल द्वारा सम्पादित मंगलोर, 1873, बी.आर.शर्मा द्वारा संपादित, तिरुपति 1965।

8. उपनिषद् ब्राह्मण

इसका अपर नाम छान्दोग्य ब्राह्मण भी है। इसमें 10 प्रपाठक है। प्रथम दो प्रपाठकों में गृह्यकृत्यों में विनियुक्त मन्त्र हैं। अत: सौविध्यवशात् इस अंश को मन्त्र ब्राह्मण अथवा मन्त्रपर्व भी कहा जाता है। अवशिष्ट आठ प्रपाठक छान्दोग्योपनिषद् कहलाते है। मन्त्र एवम् उपनिषद् दोनों को मिलाकर उपनिषद्ब्राह्मण की प्रसिद्धि है। छान्दोग्य ब्राह्मण में कुल 268 गृह्य मन्त्र है। छान्दोग्य ब्राह्मण पर दो व्याख्याएं है– गुणविष्णुकृत छान्दोग्य-मन्त्र–भाष्य तथा सायणकृत वेदार्थ प्रकाश।

छान्दोग्य ब्राह्मण में मन्त्र भाग के अतिरिक्त 08 प्रपाठकों अथवा अध्यायों में सुप्रसिद्ध छान्दोग्योपनिषद् है। छान्दोग्य उपनिषद् की वर्णन शैली अत्यन्त क्रमबद्ध और युक्तियुक्त है। इसमें तत्त्वज्ञान और तदुपयोगी कर्म तथा उपासनाओं का विशद वर्णन है। उपनिषत् के अंश पर शांकरभाष्य के अतिरिक्त आनन्द तीर्थ आदि के भाष्य भी हैं।

9. संहितोपनिषद् ब्राह्मण

यह ग्रन्थ संहिता के निगूढ अर्थ का प्रकाशक है। यहां पर संह्तिा शब्द से अभिप्राय ऐसा सामगान है, जिसका गान विशेष स्वरमण्डल से अनवरत रूप से किया जाता है। इस विषय में सायण ने कहा है – **सामवेदस्य गीतिषु सामाख्या।** द्विजराज भट्ट के मत में संहित का अर्थ आर्चिक ग्रन्थ है। यतो हि इनके मत में संहिताओं के दो रूप हैं – आर्चिक संहिता एवं गान संह्तिा।

इस ब्राह्मण पर दो भाष्य प्राप्त होते हैं – सायणकृत वेदार्थप्रकाश एवं द्विजराजभट्टकृत भाष्य। वेदार्थप्रकाश अद्यावधि प्रथम खण्ड तक ही उपलब्ध है। द्विजराजभट्ट का भाष्य सभी खण्डों पर है।

अत: अनेक स्थलों पर वह सायण की अपेक्षा अधिक उपयोगी है। 1965 में डॉ. बी.आर.शर्मा के द्वारा सम्पादित संहितोपनिषद् ब्राह्मण तिरुपति से प्रकाशित हुआ है।

10. वंश ब्राह्मण

सामवेद का यह ब्राह्मण अत्यन्त छोटा है। इसमें तीन खण्ड हैं। सामवेद के आचार्यों की वंश परम्परा का इसमें वर्णन है। इसके चार संस्करण उपलब्ध हैं। जिनमें सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा सम्पादित कलकत्ता संस्करण, वेबर द्वारा इन्दिशे स्तूदियन में प्रकाशित, ए.सी. बर्नेल द्वारा सम्पादित तथा मंगलोर से प्रकाशित, बी.आर.शर्मा द्वारा सम्पादित तथा तिरुपति से 1965 में प्रकाशित संस्करण आदि प्रमुख हैं।

11. जैमिनीय ब्राह्मण

यह ब्राह्मण तीन भागों में विभक्त हैं। इसके प्रथम भाग 360, द्वितीय में 437 और तीसरे भाग में 385 खण्ड हैं। कुल खण्डों की संख्या 1182 है। बडौदा के सूची ग्रन्थ में वर्णित परिमाण के अनुसार उपनिषद् ब्राह्मण को मिलाकर इसमें 1427 खण्ड है। प्रपंचहृदय के अनुसार इसमें 1348 खण्ड है। यद्यपि जैमिनीय ब्राह्मण एवं ताण्ड्य ब्राह्मण के विषयों में बहुत साम्य है तथापि जैमिनीय ब्राह्मण में विषय निरूपण अधिक विस्तार से है। इसमें आख्यान भी विस्तार से वर्णित हैं। इसका डॉ रघुवीर एवं लोकेशचन्द्र द्वारा सम्पादित तथा 1954 में सरस्वती विहार, नई दिल्ली से प्रकाशित संस्करण ही उपलब्ध है।

12. जैमिनीयार्षेय ब्राह्मण

यह ब्राह्मण जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण के साथ बी.आर.शर्मा के द्वारा सम्पादित होकर तिरुपति से 1967 में प्रकाशित हुआ है। इसके आरम्भ में दो वाक्य छोडकर स्वाध्याय तथा यज्ञ की दृष्टि से ऋषि, छन्द और देवता के ज्ञान पर बल दिया गया है। वर्ण्य विषय की दृष्टि से यह कौथुमशाखीय आर्षेय ब्राह्मण के समान है। यह कौथुमशाखीय ब्राह्मण की अपेक्षा संक्षिप्त है।

13. जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण

सम्पूर्ण ब्राह्मण चार अध्यायों में विभक्त है। अध्यायों का अवान्तर विभाग अनुवाकों और खण्डों में है। इस ब्राह्मण के प्रारम्भ में ओंकार और हिंकार की महत्ता पर विशेष बल दिया है। इसका समापन **सैषा शाट्यायनी गायत्रस्योपनिषद् एवमुपास्तिव्या** से होता है। इसके अनन्तर केनोपनिषद् प्रारम्भ हो जाती है।

इसके दो संस्करण प्रकाशित हैं – रामदेव के द्वारा सम्पादित तथा 1921 में लाहौर से प्रकाशित, डॉ. बी.आर.शर्मा के द्वारा सम्पादित तथा तिरुपति से 1967 में प्रकाशित।

2.14 अथर्ववेदीय ब्राह्मण : संक्षिप्त परिचय

1. गोपथ ब्राह्मण

इस ब्राह्मण का सम्बन्ध अथर्ववेद की पैप्पलाद शाखा से है। इस सम्बन्ध की पुष्टि पतञ्जलि ने व्याकरण-महाभाष्य में अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र के रूप में शन्नो देवीरभिष्टये प्रभृति मन्त्र का उल्लेख किया है जो पैप्पलादशाखीय अथर्ववेद में ही उपलब्ध होता है। इसका विवरण गोपथ ब्राह्मण में भी है।

इस ब्राह्मण के गोपथ नामकरण के विषय में विविध मत उपलब्ध होते हैं। यथा – **गोपथ** ऋषि इस ब्राह्मण के प्रवचनकर्ता है। ध्यातव्य है कि शौनकीय अथर्ववेद के चार सूक्तों (19.47-50) के द्रष्टा गोपथ माने जाते हैं। गोपथ शब्द **गोप्ता** से निष्पन्न माना गया है। **अथर्वाङ्गिरसो हि गोप्तार:**

(गो.ब्रा.1.1.13) इस वचन के अनुसार अथर्वाङ्गिरसों की प्रसिद्धि गोप्ता (रक्षक) के रूप में है। **गुप्** धातु में **अथ** के योग से **गोपथ** शब्द व्युत्पन्न हो जाता है। इन्हीं गोपथों से सम्बद्ध रहा है यह ब्राह्मणग्रन्थ।

आथर्वणपरिशिष्ट (चरण्व्यूह) के अनुसार गोपथ में 100 प्रपाठक हुआ करते थे – **तत्र गोपथः शत प्रपाठकं ब्राह्मणम् आसीत्। तस्यावशिष्टे द्वे ब्राह्मणे पूर्वम् उत्तरं च।** सम्प्रति इसमें दो भाग हैं – पूर्व और उत्तर। पूर्वभाग में पांच प्रपाठक हैं और उत्तरभाग में छः। इस प्रकार समस्त प्रपाठकों की संख्या केवल 11 है। पूर्वभाग में पांचों प्रपाठकों की कुल कण्डिकाएं 135 हैं और उत्तर भाग में 123।

गोपथ के पूर्वभाग के प्रथम प्रपाठक में सर्वप्रथम सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन है। द्वितीय प्रपाठक की प्रथम आठ कण्डिकाओं में ब्रह्मचारी के महत्त्व और कर्त्तव्यों का निरूपण है। तदनन्तर यज्ञ में होता प्रभृति चारों ऋत्विजों की भूमिका का प्रतिपादन है। तृतीय प्रपाठक में यज्ञ विवेचन है। चतुर्थ प्रपाठक में गवामयनादि सत्रयागों की मीमांसा है। यही विषय पंचम प्रपाठक में भी है। अन्त में बहुसंख्यक कारिकाएं भी है जो कि यज्ञ क्रम के स्मरण को सुगम बनाती हैं। उत्तरभाग के प्रथम प्रपाठक में ब्रह्माख्य ऋत्विक् की प्ररोचना है। तदनन्तर 12वीं कण्डिका तक दर्शपूर्णमास का वर्णन है। इसके पश्चात् 04 कण्डिकाओं (13-16) में काम्येष्टियों का निरूपण है। तदनन्तर 10 कण्डिकाओं (17-26) में आग्रयण, अग्निचयन और चातुर्मास्यों का वर्णन है। द्वितीय प्रपाठक की प्रथम कण्डिका में काम्येष्टियों का उल्लेख है। तत्पश्चात् तानूनप्त्रेष्टि, प्रवर्ग्येष्टि, यज्ञ-शरीर के भेद, दूसरे के सोमयाग के ध्वंस और सोमस्कन्द-प्रायश्चित्त का वर्णन है। आगे स्तोमभाग, आग्नीध्र, प्रवृत्ताहुतियों, सदस्जन्यकर्म, प्रस्थित ग्रहों तथा दर्शपूर्णमास का निरूपण है। तृतीय प्रपाठक की विषयवस्तु क्रमशः यह है – वषट्कार और अनुवषट्कार (1-6) ऋतुग्रहादि (7-11), एकाह प्रातः सवन (12-19), एकाह माध्यन्दिन सवन (20-23)। चतुर्थ प्रपाठक में पूर्वक्रम का अनुवर्तन करते हुए एकाह के तृतीय सवन का निरूपण करने के अनन्तर षोडाशीयाग का विधान है। इसी क्रम में पंचम और षष्ठ प्रपाठकों की सामग्री भी है, जिनमें अतिरात्र, सौत्रामणी, वाजपेय, अप्तोर्याम, अहीन और सत्रयाग निरूपित हैं।

गोपथ ब्राह्मण के विविध संस्करणों में राजेन्द्रलाल मित्र तथा हरचन्द्र विद्याभूषण के द्वारा संपादित तथा सन् 1872 में, कलकत्ता से प्रकाशित, जीवानन्द सागर द्वारा 1891 में कलकत्ता से प्रकाशित, ड्यूक गास्ट्रा द्वारा सुसम्पादित, लाइडेन से 1918 में प्रकाशित, 1972 में इण्डोलाजिकल बुक हाउस के द्वारा फोटो-प्रति के रूप में इसी का पुनर्मुद्रण। क्षेमकरणदास द्विवेदी के द्वारा 1924 में हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित। इसी का प्रज्ञा देवी के द्वारा पुनः सम्पादित रूप में 1977 में प्रकाशन हुआ। डॉ. विजयपाल विद्यावारिधि के द्वारा सम्पादित तथा 1980 में रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, हरियाणा से मुद्रित।

2.15 आरण्यक की आवश्यकता

श्रौतयागों के यथार्थ स्वरूप बहुविध विस्तृत होने के कारण उनका वास्तविक तत्त्व (मर्म) लुप्त होने लगा जन मानस लुप्त होने लगा था, परिणामतः यह आवश्यकता हुई कि श्रौतयागों की आध्यात्मिक एवं प्रतीकात्मक व्याख्या हो। ब्राह्मण ग्रंथो के उत्तरार्द्ध में वैदिक यागों के मूल में निहित गम्भीर अर्थवत्ता, वास्तविक मर्म एवम् आध्यात्मिक रहस्यों के सन्धान के लिए जिस चिन्तन को आकार प्राप्त हुआ, उसी का नाम आरण्यक साहित्य पडा। ये ग्रन्थ ब्राह्मण एवम् उपनिषदों के मध्य सेतुवत् हैं। वानप्रस्थी लोगों के यह साहित्य विशेषतः उपयोगी है। उपनिषदों में प्राप्त आध्यात्मिक उन्नति का कारक ये आरण्यक ही हैं।